कृष्ण बिहारी पाठक

करौली, राजस्थान

संवाद के सेतु

साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में ग़ज़ल में संवाद का आग्रह कुछ अधिक और विशिष्ट होता है। यह संवाद रचनाकार का अपने आप से भी है और दूसरों से भी। रचनाकार के अपने भोगे हुए, सोचे हुए और देखे हुए यथार्थ को भावना के पूरे आवेग से ग़ज़ल कहकर सुनाती है।

भावना का आवेग, रूमानियत, लोकसंपृक्ति ग़ज़ल के नियमित विशेषक हैं, परंतु इस विधा की चरितार्थता तभी है जब ये विशेषक निष्प्रयास ही ग़ज़ल के कहन में उतरते हों, बलपूर्वक या तरेर कर नहीं।

श्वेतवर्णा प्रकाशन से आशा पांडेय ओझा 'आशा' का सद्य प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह 'कहाँ हम साँस लें खुलकर' इस दृष्टि से अपनी ओर खींचता है कि इसमें भावानुभूतियों की स्वभावसिद्ध सहज अभिव्यंजना प्रदर्शनविहीन आत्मीयता को स्पंदित - आंदोलित करती है।

समकाल के पदचापों की आहट को सुनती समझती ग़ज़लों में समसामयिक जीवन और जगत की छोटी से छोटी संवेदनाओं को पिरोकर आशा पांडे ने अपनी लोकसंपृक्ति का समर्थ प्रमाण दिया है।

छूटता बचपन, गुम होते खेल खिलौने, लुप्त होती मासूमियत, सुनसान चौराहे, आँगन, उपवन, गुड़ की भेली सा मिठासपूर्ण मातृत्व लुटाती अम्मा, विदा होती बेटियाँ, रिश्ते नातों की बनावट बुनावट सबकुछ जैसे एक रौ में इन ग़ज़लों में सूत्रबद्ध होते गए हैं। अलग अलग भावभूमि पर कही गई ये ग़ज़ल अपने समग्र स्वरूप में अनेक होकर भी एक ही कविता का सा आभास देतीं हैं।

रचनाकार के नाम और स्वभाव के अनुसार इस संग्रह की पहली ग़ज़ल आशा का संदेश लेकर उतरती है। संघर्षों के बीच दमकते महकते मुस्कुराते जीवन को 'आँखों में ख्वाब रखना, और खुद को गुलाब रखना' जैसी पंक्तियाँ कितनी सहजता से व्यंजित करतीं हैं यह कहने की आवश्यकता नहीं। क्रोध, आपाधापी, ईर्ष्या द्वेष के तुमुल कोलाहल भरे जीवन में शांति, शील और सौमनस्य का पाठ पढाती ये पंक्तियाँ देखें -

" तलवार तीर तजकर

घर में किताब रखना

जीवन मिला ज़रा भर

इसका हिसाब रखना" (पृष्ठ 22)

जीवन मिला ज़रा भर में जैसे संतों के क्षणवादी जीवन दर्शन का आभास देकर शाइरा हिंसा, द्वेष से मुक्त एक सुख-शांति भरे जीवन संसार की कामना करती है।

स्त्री कभी माता, पत्नी, बहन और कभी पुत्री या मित्र बनकर जीवन का अनिवार्य आसिंजन है। इस पुस्तक की ग़ज़लों में मानवीय संबंधों के बरक्स स्त्री की बहुविध रूपछवियों, भावरूपों के दर्शन-दिग्दर्शन होतें हैं।बेटी को लेकर शाइरा ने एकाधिक ग़ज़लें कहीं हैं। रोशन घर को करती बेटी, घुप्प अँधेरे हरती बेटी 'तथा मीठी मीठी मुस्कानों से रस जीवन में भरती बेटी जैसी पंक्तियों में जहाँ मकानों को घर में बदलने वाली उत्सवधर्मिता के प्रतीक के रूप में में बेटी आती हैं वहीं बेटी की विदाई से घर में सूनापन और सन्नाटा छाने की मायूस उदासी भी शब्दों में उतरती है, यह कहकर कि-

"करा के वो बेटी विदा ले गये

लगा, पूँजी सारी जमा ले गये" (पृष्ठ 80)

मातृत्व के पसारे में बेटा-बेटी एक बराबर हैं। बेटी धरती बेटा अंबर, बेटी नदियाँ बेटा सरवर तथा बेटी तितली बेटा मधुकर और दोनों ही से दुनिया सुंदर कहकर शाइरा यही पुष्टि देती है।

मानवीय संबंधों के बीच स्त्री से जुड़े हर छोटे-बड़े संदर्भ पर संवेदनशील शाइरा की दृष्टि गई है। 'नहीं कमतर किसी से आज बिटिया, वो ताकत है हमारी हौसला है, कहते हुए वह आज की नारी के निर्भीक समुत्थान की आवाज को गहराती है तो वहीं' गुड़ की भेली जैसी अम्मा, ख़ास सहेली जैसी अम्मा' कहकर मातृत्व के अक्षय मधुकोश की मिठास से हृदय, बुद्धि को स्निग्ध कर जाती है।

ममतामयी माता के सात्विक संकल्प और उदारचेतना कैसे पूरे परिवार को एकसूत्र में बाँधते आ रहे हैं इसे अँगुलियों और हथेली के चिरपरिचित और चिरस्पर्शी बिंब द्वारा दर्शाता यह बंद अपने आप में आकर्षण का केंद्र बन गया है -

"न्यारी - न्यारी अँगुली बच्चे

और हथेली जैसी अम्मा" (पृष्ठ 79)

हथेली का बिंब हमारी मनोरचनाओं में संबलन का, एकीकरण का और सहारे का प्रतीक है, माता के साथ लगकर यह कितना अर्थपूर्ण और प्रभावी बन गया है। 'जीवन के चूल्हे पर जलती, रोज तपेली जैसी अम्मा' के साथ माता के त्याग, संघर्ष और समर्पण की गूँज अनुगूँज अपने शुद्धतम स्वरों में जी उठती है।

आशा पांडे अपनी रचनात्मकता में आज के इंसान और उसकी झूठी पडती संवेदनाओं को एक क्षोभ और अमर्ष के साथ कहती नजर आती हैं। चित्र, चरित्र में तथा कथनी और करनी में भारी विरोधाभास के साथ जीता आज के आदमी के छद्म व्यवहार को उजागर करने की आवाज़ कुछ यूँ उठती है -

" उतनी उजली काया उनकी

जितने धंधे काले पगले

अब मिलते हैं अक्सर दुश्मन

बाँह गले में डाले पगले" (पृष्ठ 27)

बढते भौतिकतावाद, मशीनीकरण और बाजारवाद ने हमें किस हद तक घेर या जकड़ लिया है यह सबके सामने है। सुविधाभोगी जीवन की ललक ने सुख शांति को जीवन से लगभग तिरोहित सा कर दिया है। परिजनों के साथ बैठकर आत्मीय संवाद करने के दिन तो जैसे अब लद ही गए हैं। भौतिक सुखों की चाह में पूरा परिवार अब कमाने निकलता है ऐसे में साथ बैठ कर सुख-दुख बतियाने के अवकाश कहाँ? रही सही कसर मोबाइल ने पूरी कर दी जिसने पता नहीं दुनिया को मुट्ठी में समेटा है या दुनियादारी को घर में? जो भी हो यह मनुष्य के लिए अच्छा संकेत तो नहीं है। आशा पांडे ने इस सत्य तथ्य को ग़ज़ल के कलेवर में उतारा है

" सारा घर ही दफ्तर जाता

झटके घर के जाले कौन

उलझे हम-तुम मोबाइल में

दीप साँझ का बाले मौन" (पृष्ठ 30)

घर में संध्याबाती करने तक के लिए हमें फुर्सत नहीं है, तकनीक ने हमारी परंपराओं को किस तरह लील लिया है यह बहुत स्पष्टतया दिख जाता है।मानव और उसका मन अपनी स्वाभाविकता खोते जा रहे हैं, यह चिंता रचनाकार को भी परेशान करती है, इसीलिए वह प्रकृति के लीलाभिराम से जुडाने वाला दृश्य, प्रसंग वर्णन करने में कोई कसर नहीं उठा रखती है। यह छंद देखें -

"सूरज की इस दीपशिखा में

भरता रोज उजाले कौन।" (पृष्ठ 31)

प्रकृति के लीलाभिराम का मनोहर रहस्यवादी स्वर यहाँ हृदय को स्पंदित कर देता है। वो कौन चित्रकार है जिसने जगत को बहुरंगी रंग - कल्पनाओं से रंग दिया है। मुझे निराला याद आते हैं, रहस्यवादी भंगिमा में जैसे निराला की कहन है बहुत कुछ आशा पांडे का भी भाव वहीं आकर सम पर मिलता है। निराला कहते हैं

- कौन तम के पार ?-- (रे, कह)

अखिल पल के स्रोत, जल-जग,

गगन घन-घन-धार--(रे, कह)

इस संग्रह की अन्यान्य विशेषताओं के बीच यह बात आकर्षित करती है कि हिंदी काव्य परंपरा के लगभग सभी स्वरों की गूँज तथा सभी प्रमुख प्रवृत्तियों की छाया यहाँ बहुत सहजता से वर्तमान है।

रात्रि के गहन अंधकार को छिन्न भिन्न कर आकाश में चमकते सूरज को फलक पर की गई कारीगरी कहकर दृश्य गतिविधियों के अदृश्य संचालक के प्रति रागात्मकता व्यक्त की गई है। यह रागात्मकता ही इस अर्थकेंद्रित समय में मनुष्य और मनुष्यता को बचा सकेगी। पैसे की चाहत, लालसा और अर्थोन्माद को शाइरा ने अपनी अभिव्यंजना में दर्शाया है -

" हँसी पैसा, खुशी पैसा, सभी का ख्वाब पैसा है

लडाई भी यही पैसा, बने अहबाब पैसा है" (पृष्ठ 36)

मनुष्य मशीन बनने की ओर अग्रसर है। भावना संवेदना शून्य यंत्र सा, 'आदमीयत मिली नहीं ढूँढे, आदमी भी कभी बनाया कर, कहने में जैसे यही पीड़ा और कसक है। अपने चारों ओर ऐसी विसंवादी, नकारात्मक और निराशाभरी स्थितियों को व्यक्त करने वाली एकाधिक ग़ज़लें इस संग्रह में जो घुटन और संत्रास के यथार्थ को

कहती समझाती हैं। संग्रह का शीर्षक 'कहाँ हम साँस ले खुलकर' भी यही व्यंजना देता है।

झूठे पडते रिश्ते नाते, चुकती हुई संवेदनाएँ और मृत होती भावनाओं की सच्चाई इन पंक्तियों में कितनी साफ - सफ्फाक है -

"गलियाँ मन की टेढ़ी - मेढ़ी, रिश्तों में अय्यारी है

ऐंठी-ऐंठी घूम रही खुशियों की लीला न्यारी है

भाव शून्य से इस जीवन में निज साँस तलक इक बोझा

सर के ऊपर पीर चढ़ी सपनों का मरना जारी है

भौतिकता है हावी इतनी ऱोज मुखौटे नव धारें

क्षोभ हमें खुद पर आता क्या हालत आज हमारी है"(पृष्ठ 45)

आज के जटिल जीवन का यह यथार्थ है इससे बचकर तो नहीं जाया सकता परंतु शाइरा का स्वर इन स्थितियों को बदलने के लिए आशा से भरकर गूँजता है। प्रेम, करुणा, दया, त्याग और समर्पण जैसे जीवन मूल्यों और सद्वृत्तियों को जगाने सहलाने के क्रम में कलम बार बार उठती जाती है। खुशबुओं से भरे चमन के लिए और उजाले की किरण के लिए वह मानवता का आह्वान करती है।

जिजीविषा और मंगलाशा में रची बसी ये पंक्तियाँ कितनी स्पर्शपूर्ण हैं -

"हर-सू आज उजाला लिख दे

अँधियारों पर ताला लिख दे

भूख बिलखती है जिस घर में

उसके द्वार निवाला लिख दे

प्यार भरे सौंधे लम्हों की

छंदों में इक माला लिख दे" (पृष्ठ 51)

प्रेम और प्रेरणा के छंदों को गूंथ -बाँधकर आशा पांडे ओझा ने यह छंदमाला तैयार की है जिसके सौंधे फूलों की सुगंध दिगंत में बिना मुरझाए महकती है। आत्मकेंद्रित, स्वार्थ लिप्सा की दुर्गंध को यहाँ कोई स्थान नहीं है -

" सेंके अपनी ही रोटी

कभी भलाई जन की कर" (पृष्ठ 74)

ग़ज़ल के विषयगत विस्तार और बहुलता के साथ आशा पांडे ओझा ने शिल्प के स्तर पर भी कुछ नवाचार किये हैं। संग्रह में मात्र चौदह पंद्रह शब्दों की एक ग़ज़ल है जो अपने लघु कलेवर में गुरुत्वपूर्ण अर्थ वैभव के साथ गागर में सागर का आभास कराती है। देखें -

हम थे/ग़म थे/हर इक/दम थे/नैना/नम थे/रस्ते / ख़म थे/गहरे /तम थे/रिश्ते /सम थे/सुख भी /कम थे (पृष्ठ 87)

इसी तरह बादल को संबोधित एक ग़ज़ल है जिसमें बादलों के चित्र चरित्र तथा उनसे जुड़ी विविधतापूर्ण मानवीय संवेदनाओं का समर्थ चित्रांकन है। बादलों की बहुरंगी दुनिया है जहाँ छिपते, इतराते बादल हैं, रोकर आँसू ढलकाते

बादल हैं, प्यासी धरा को देख छा जाने वाले बादल हैं तो लंबी प्रतीक्षा के बाद भी बिन बरसे लौट जाने वाले बादल हैं। धा धा धिर धिर की गर्जन तर्जन का संगीत सुनाने वाले बादल हैं तो सावन के झूलों के साथ बल खाने वाले बादल हैं। समीर सागर पर तिरते, अपने ही आवेश मे घिरते, घटटोप झुकते बादल हैं, संदेशा लाते, ले जाते बादल हैं।

फलता-फूलता भ्रष्टाचार, सार्वजनिक संपत्ति को क्षतिग्रस्त करते इरादों और आए दिन उठती रिश्वतखोरी से क्षुब्ध शाइरा व्यंग्य भरी मुद्रा में अपने अमर्ष को व्यक्त करती है -

"आओ - आओ चारा खाएँ

मिलकर देश हमारा खाएँ

बूढ़ों, विधवाओं का हिस्सा

पेंशन और गुज़ारा खाएँ" (पृष्ठ 102)

जीवन और जगत के बहुविध अर्थसंदर्भों को आशा पांडे ओझा ने पूरे सामर्थ्य से अपनी ग़ज़लों में रूपायित किया है। भावानात्मक आवेग और संवेदनात्मक गहनता के चलते संग्रह की सभी ग़ज़लें सीधे भावक के हृदय पर दस्तक देतीं हैं।

धरोहर

मीर तक़ी मीर

उल्टी हो गईं सब तदबीरें कुछ न दवा ने काम किया
देखा इस बीमारी-ए-दिल ने आख़िर काम तमाम किया

अहद-ए-जवानी रो रो काटा पीरी में लीं आँखें मूँद
या'नी रात बहुत थे जागे सुब्ह हुई आराम किया

हर्फ़ नहीं जाँ-बख़्शी में उस की ख़ूबी अपनी क़िस्मत की
हम से जो पहले कह भेजा सो मरने का पैग़ाम किया

नाहक़ हम मजबूरों पर ये तोहमत है मुख़्तारी की
चाहते हैं सो आप करें हैं हम को अबस बदनाम किया

सारे रिंद औबाश जहाँ के तुझ से सुजूद में रहते हैं
बाँके टेढ़े तिरछे तीखे सब का तुझ को इमाम किया

सरज़द हम से बे-अदबी तो वहशत में भी कम ही हुई
कोसों उस की ओर गए पर सज्दा हर हर गाम किया

किस का काबा कैसा क़िबला कौन हरम है क्या एहराम
कूचे के उस के बाशिंदों ने सब को यहीं से सलाम किया

शैख़ जो है मस्जिद में नंगा रात को था मय-ख़ाने में
जुब्बा ख़िर्क़ा कुर्ता टोपी मस्ती में इनआ'म किया

काश अब बुर्क़ा मुँह से उठा दे वर्ना फिर क्या हासिल है
आँख मुँदे पर उन ने गो दीदार को अपने आम किया

याँ के सपीद ओ सियह में हम को दख़्ल जो है सो इतना है
रात को रो रो सुब्ह किया या दिन को जूँ तूँ शाम किया

सुब्ह चमन में उस को कहीं तकलीफ़-ए-हवा ले आई थी
रुख़ से गुल को मोल लिया क़ामत से सर्व ग़ुलाम किया

साअद-ए-सीमीं दोनों उस के हाथ में ला कर छोड़ दिए
भूले उस के क़ौल-ओ-क़सम पर हाए ख़याल-ए-ख़ाम किया

काम हुए हैं सारे ज़ाएअ' हर साअ'त की समाजत से
इस्तिग़्ना की चौगुनी उन ने जूँ जूँ मैं इबराम किया

ऐसे आहु-ए-रम-ख़ुर्दा की वहशत खोनी मुश्किल थी
सेहर किया ए'जाज़ किया जिन लोगों ने तुझ को राम किया

'मीर' के दीन-ओ-मज़हब को अब पूछते क्या हो उन ने तो
क़श्क़ा खींचा दैर में बैठा कब का तर्क इस्लाम किया